धार्मिक विकास (300ई. से 650ई.)

हिन्दू धर्म :

गुप्त काल ब्राह्मण धर्म के पुनरूत्थान का प्रतीक माना जाता है। गुप्त सम्राटों ने वैदिक धर्म के विविध अनुष्ठानों और क्रियाविधियों को अपनाया और वैदिक धर्म के अनुसार यज्ञ इत्यादि किये। अधिकांश गुप्त शासक वैष्णव थे। हालांकि कुछ शासक शैव एवं बौद्ध धर्म दर्शन में भी विश्वास रखते थे। फिर भी राजकीय धर्म के रूप में वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा थी तथा इस धर्म के प्रचार–प्रसार के लिये राज्य की तरफ से भरसक प्रयास किये जाते थे। इस वजह से वैष्णव धर्म की लोकप्रियता में काफी बढ़ोत्तरी हुई।

हिन्दू धर्म के पुनरूत्थान की प्रक्रिया गुप्त साम्राज्य की स्थापना से पूर्व ही प्रारम्भ हो गयी थी और गुप्तकाल में विकास कीं इस प्रक्रिया में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हुई। बौद्ध और जैन धर्म का भी अस्तित्व बना रहा, यद्यपि वे छठी शताब्दी ईसा पूर्व की भांति सर्वाधिक महत्वपूर्ण धर्म नहीं है। वह स्थान अब वैष्णव एवं शैव धर्म को प्राप्त हो गया था।

अभिलेखों और मुद्राओं के स्रोत से उत्तर और दक्षिण भारत के शासकों/ सम्राटों के द्वारा वैदिक यज्ञ करने के प्रमाण मिले हैं। अल्तेकर के अनुसार तीसरी और चौथी शताब्दियों में यज्ञों की जितनी लोकप्रियता थी उतनी पहले कभी नहीं थी। गुप्त शासकों ने भी वैदिक परम्पराओं और प्रणालियों के अनुसार अश्वमेध यज्ञ किये। इसके अतिरिक्त अग्निष्टोम, बाजपेय, वाजसनेय आदि यज्ञ भी किये जाने लगे। अभिलेखों से जानकारी मिलती है कि ब्राह्मणों को भूमिदान दिये जाने की परम्परा बढ़ी। साधारण जनता में भी पंचमहायज्ञों के प्रति अगाध श्रद्धा थी। इस समय तक हिन्दू धर्म के तीन महत्वपूर्ण पक्ष विकसित हुए। मूर्ति उपासना का केन्द्र बन गयी और यज्ञ का स्थान उपासना ने ले लिया। मूर्ति को बलि चढ़ाने की प्रथा भी प्रचलित रही। मानव जीवन

के चार लक्ष्य बताये गये – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष प्राप्ति के लिये धर्म, अर्थ और काम में सम्यक संतुलन आवश्यक था। वैदिक देवताओं की प्रतिष्ठा पहले से कम हो गयी और हिन्दू धर्म के दो मुख्य सम्प्रदाय विकसित हुए – वैष्णव और शैव। इन दोनों धर्मों का समन्वय गुप्तकाल की विशेषता है। भक्ति के सिद्धान्त को प्रोत्साहन मिला जिसमें पुरोहित की प्रतिष्ठा यज्ञों की तुलना में कम थी। ईश्वर की भक्ति एक व्यक्तिगत वस्तु बन गयी।

सुवीरा जॉयसवाल ने विस्तृत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि वैष्णव धर्म गुप्त काल में भारत में प्रत्येक प्रान्त में फैला तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया, हिन्द–चीन, कम्बोडिया, मलाया, इण्डोनेशिया तक इसका प्रचार हुआ। भारत के प्रत्येक प्रान्त में इस धर्म के विस्तार के प्रमाण शिलालेखों, सिक्कों और साहित्य के माध्यम से मिलते हैं। स्पष्ट है कि गुप्त काल में भागवत धर्म अपनी पराकाष्ठा पर था। विष्णु या नारायण अथवा नर नारायण का पूजन और मूर्ति निर्माण बहुत अधिक विकसित था। स्थापत्य और साहित्य दोनों में विष्णु को विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया।

सन् 300–650 ई. के बीच वैष्णव धर्म का केवल प्रसार ही नहीं हुआ वरन अनेक रूपों में उसका विकास भी हुआ। यह विकास प्रधानतया अवतारवाद के रूप में था। वैष्णव धर्म में पहले से चले आ रहे अवतारवाद के विचार को विशेष रूप से विकसित किया गया और यहीं अवतारवाद इस धर्म का प्रधान अंग बन गया। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार विष्णु के 39 अवतार हुए हैं किन्तु दस अवतारों को आमतौर पर स्वीकार किया गया है। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम कृष्ण, बुद्ध व कल्कि। अवतारवाद की अवधारणा यह थी कि सांसारिक कष्टों से भक्तों को मुक्त करने के लिये एक अवतार होगा। इस विचार ने निम्न वर्ग को अत्यधिक प्रभावित किया होगा। अवतारवाद के माध्यम से न केवल विभिन्न प्रमुख धर्मों के अनुयायियों अपितु कबायली एवं जनजातीय लोगों में धार्मिक विश्वास एवं आस्था को वैष्णव पंथ के भीतर समाविष्ट करने का प्रयास किया गया। नारायण, संकर्षण, लक्ष्मी जैसे

अवैदिक देवी देवताओं को वैष्णव धर्म का अंग बना लिया गया। यह प्रक्रिया मुख्यतः गुप्त काल की देन है।

वैष्णव धर्म का विकास (प्रारम्भ से गुप्तकाल तक)

वैष्णव धर्म भगवान विष्णु से सम्बन्धित है। वे लोग जो विष्णु को अपना इष्टदेव मानते हैं और उनकी उपासना करते हैं, वैष्णव कहलाते हैं। विष्णु की उपासना से सम्बन्धित धर्म दर्शन वैष्णव धर्म कहलाता है।

भारतीय समाज में विष्णु की उपासना वैदिक काल (1500 ई.पू.) से चली आ रही है। वैदिक देवमण्डल में विष्णु आकाश में विचरण करने वाले सूर्य का रूप था। जो तीन डगों में समस्त विश्व को नाप लेता था। संकट में पड़े मनुष्य की रक्षा के लिये वह सदैव तत्पर था। लेकिन अपनी इन विशिष्टताओं के बावजूद वह इन्द्र और वरूण की तुलना में कम महत्वपूर्ण माना गया।

छठी शताब्दी ई.पू. में वासुदेव कृष्ण की उपासना के साक्ष्य उपलब्ध हैं। इस समय कृष्ण की उपासना करने वाले वासुदेवक कहे जाते थे और उनका धर्म भागवत धर्म कहलाता था। पाणिनी का आष्टाध्यायी से हमें इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। सम्भवतः वासुदेव कृष्ण को प्रधान देवता मानकर उनकी उपासना शक्ति के नये आदर्श के रूप में समाज में प्रचलित हुई। पतंजलि के महाभाष्य में वासुदेव को विष्णु का रूप बताया गया है। उसने कृष्ण और संकर्षण के मंदिरों का विवरण भी दिया है। पाणिनी की आष्टाध्यायी और पतंजलि के महाभाष्य से मिलने वाली सूचनाओं से संकेत मिलता है कि इस समय वासुदेव का पूजन और भागवत धर्म का प्रसार तीव्र गति से प्रारम्भ हो चुका था। तत्कालीन समाज में कंस और वासुदेव सम्बन्धी आख्यान प्रचलित हो चुके थे। कंस वध के चित्र बनाये जाते थे तथा वासुदेव कृष्ण का यशोगान किया जाता था। भागवत धर्म का अनुसरण करने वाले स्त्री और पुरूष क्रमशः भागवती एवं भागवतम् कहलाते थे। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में वासुदेव की उपासना और उसके जनाधार का एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध है। बेसनगर से द्वितीय शताब्दी ई.पू. का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह

अभिलेख एक यूनानी दूत हेलियोडोरस के द्वारा अंकित किया गया है। अभिलेख में स्पष्ट लिखा है कि तक्षशिला के निवासी हेलियोडोरस ने वासुदेव की प्रतिष्ठा में गरूड़ध्वज स्थापित करवाया, अपने आपको को भागवत घोषित किया। यह भागवत धर्म के प्रभाव एवं जनाधार की ओर संकेत करता है जिससे प्रभावित होकर विदेशी भी भागवत धर्म के अनुयायी हो जाते थे।

पांचरात्रमत इस मत का विकास तीसरी सदी ई.पू. में हुआ। यह वैष्णव धर्म का प्रधान मत था। इस मत के अन्तर्गत वासुदेव और उनके विभिन्न रूपों का पूजन किया जाता है। वासुदेव के छः गुण बताये गये हैं।

जगत की सृष्टि (i) ज्ञान और बल – संकर्षण व्यूह (कृष्ण के भाई बलराम)
तन्मार्गसम्मत क्रिया (ii) ऐश्वर्य और वीर्य – प्रद्युम्न व्यूह (कृष्ण पुत्र)
क्रियाफल मोक्ष–तत्व (iii) शक्ति और तेज – अनिरूद्ध व्यूह (कृष्ण पौत्र)

भगवान विष्णु ने स्वयं को प्रकृति के विभिन्न रूपों में भी प्रकट किया है जिन्हें विभव कहा गया है। इनको अवतार भी कहा जाता है।

पांचरात्र के भीतर परम तत्व, मुक्ति, युक्ति, योग, विषय आदि पांच तत्वों की कल्पना की गयी है। पांचरात्र के माध्यम से एकायन अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। पांचरात्र का प्रधान आधार व्यूहवाद था जिसके व्यूहों की पूजा होती थी, पांचरात्र साहित्य की कुछ संहितायें चौथी और सातवीं सदी के बीच काश्मीर में भी लिखी गयी। अमरकोश नामक ग्रंथ पांचरात्र मत के व्यूहों का उल्लेख करता है।

सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ पंचतंत्र है। पाचरात्र सम्प्रदाय के लोग मुख्य रूप से नारायण की उपासना करते थे। नारायण के आख्यायनों में जो विवेचना प्रस्तुत की गयी है उसके अनुसार नारायण को जल में शेष–शैय्या (सर्पफण) पर प्रदर्शित किया गया है। मनु के अनुसार नारायण का अर्थ जल में निवास करने वाला है। नारा या जल परमात्मा का आश्रय माना गया है और उन्हें नारायण की संज्ञा दी गयी। मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में नारायण को विष्णु का स्वरूप माना गया है।

वैष्णव धर्म का उत्कर्ष काल :

गुप्त काल में वैष्णव धर्म अपने चरमोत्कर्ष पर था। इस काल में विष्णु/ नारायण की पूजा मूर्ति बनाकर की जाती थी। स्थापत्य और साहित्य दोनों में विष्णु की विभिन्न रूपों का चित्रांकन किया गया है। इस युग में शासकों के द्वारा धर्म को प्रश्रय मिला जिसकी वजह से स्थापत्य और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में वैष्णव धर्म का विकास हुआ।

कालीदास के वर्णन के अनुसार भगवान विष्णु सागर तल पर सहस्त्र फणों वाले शेषनाग की शैय्या पर विश्राम करते हैं और उनके फैले हुए चरण के निकट लक्ष्मी का अंकन है। चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित है। वक्ष पर कौस्तुभ नामक मणि शोभायमान है। साथ में वाहन गरूड़ प्रदर्शित है। कालान्तर में इसी वर्णन के अनुरूप शेष शायी विष्णु की अनेक मूर्तियाँ गढ़ी गयी। ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनों के कार्य उनके भीतर समाविष्ट हैं यथा प्रारम्भ में वे ब्राह्माण्ड का सृजन करते हैं, मध्य में उसे धारण करते हैं (पालनकर्ता) तथा अन्त में उसका संहार करते हैं।

गुप्त सम्राटों की मुद्राओं पर उनकी उपाधि परमभागवत अंकित है। यह उनके वैष्णव धर्म अनुयायी होने का संकेत है। चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमार गुप्त, स्कन्ध गुप्त आदि गुप्त शाशक वैष्णव धर्म को मानते थे। उनकी मुद्राओं और तत्कालीन अभिलेख वैष्णव धर्म सम्बन्धी अनेकों संकेत देते हैं। उ. कुमार गुप्त के गढ़वा अभि. में विष्णु को 'भगवत्' कहा गया है।

स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख 456 ई. का है। इस अभिलेख में विष्णु मन्दिर का निर्माण कराये जाने का वर्णन है। साथ में विष्णु के वामन अवतार का भी उल्लेख मिलता है जिसने छल करके बलि से लक्ष्मी छीन ली थी। बुद्धगुप्त (483 ई.) का एक अभिलेख एरण से मिला है। यह भगवान जनार्दन (वासुदेव) के स्मरण और सम्मान में

ध्वज स्तम्भ का निर्माण कराने के उल्लेख हैं। महरौली का लौह स्तम्भ चन्द्र नामक शासक द्वारा विष्णु ध्वज के निर्माण का उल्लेख करता है।

हिन्दु धर्म में विष्णु के दस अवतार प्रसिद्ध हुए हैं मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध, कल्कि। इन अवतारों में कृष्ण को सम्मिलित नहीं किया गया है। कृष्ण को स्वयं भगवान का साक्षात रूप माना गया है। कृष्ण विष्णु के ही रूप हैं। महाभारत में युधिष्ठिर उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं – 'यह सम्पूर्ण जगत आपकी लीलामयी सृष्टि है। आप ही इस विष्णु की आत्मा हैं। व्यापक होने के कारण आप विष्णु हैं।'

विष्णु के विभिन्न अवतारो में राम का अवतार समाज में सर्वाधिक व्यापक मान्य और प्रतिष्ठित हुआ। राम के महत्व और उनकी गरिमा को लेकर बाल्मीकि ने रामायण की रचना बहुत पहले कर दी थी। किन्तु वासुदेव कृष्ण की तुलना में राम का प्रचार और प्रसार कम हुआ। वस्तुतः राम को अवतार के रूप में मानने का क्रम परवर्ती काल में सम्भवतः पहली सदी ई. में प्रारम्भ हुआ। जिसका वर्णन गुप्तकालीन पुराण साहित्य में मलता है। पुराणों के अतिरिक्त कालिदास कृत रघुवंश में भी विष्णु अवतार के रूप में राम जन्म की कथा मिलती है। वायु पुराण के अतिरिक्त, जिसकी प्राचीनता अधिक आंकी गयी है, अन्य सभी पुराणों में राम विष्णु अवतार बताये गये हैं। गुप्तयुगीन स्थापत्य और वास्तुकला में रामाख्यान के दृश्य मिलते हैं। देवगढ़ (झांसी, उ.प्र.) से राम, सीता, लक्ष्मण आदि की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। किन्तु पूर्व–गुप्तयुगीन साहित्य में राम अवतार का रूप नहीं मिलता है। न पतंजलि के महाभाष्य में इसका संदर्भ उपलब्ध है और न ही पूर्ववर्ती स्मृतियों में। रामोपासना का वह विकास नहीं हुआ जो वासदेव कृष्ण की उपासना का हुआ।

शैव धर्म :

शिव से सम्बन्धित धर्म को शैव धर्म कहा जाता है। शिव इस धर्म के आराध्य देव हैं तथा उनके उपासकों को शैव की संज्ञा दी गयी है। भारत में शिव की उपासना काफी प्राचीन काल से चली आ रही है। शिव उपासना का प्रारम्भिक रूप

हमें सैन्धव/हड़प्पा सभ्यता के पुरास्थलों से मिलता है। इन पुरास्थलों में मोहन जोदड़ो से हमें एक मुहर मिली है जिस पर शिव के पराक्रम रूप का अंकन किया गया है। इसके अलावा हमें मिट्टी के बने शिवलिंग यत्र–तत्र बिखरे हुए मिले हैं। ऋग्वेद में भी हमें रूद्र नामक देवता का उल्लेख मिलता है जिसका साम्य शिव से बिठाया गया है। ऋग्वैदिक काल में रूद्र की उपासना रौद्र और सौम्य दोनों ही रूपों में की जाती थी। अपने रौद्र रूप में वह पशु एवं मानव जाति का संहार करने वाला माना गया है। अपने सौम्य रूप में वह जगत का पालनकर्ता अर्थात् शिव है। ऋग्वैदिक देवमण्डल में रूद्र का महत्व अपेक्षाकृत कम था। किन्तु बाद की संहिताओं में और ब्राह्मण ग्रंथों के उल्लेखों में हम उनके महत्व में लगातार वृद्धि पाते हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में रूद्र की गणना सर्वप्रथम देवता के रूप में मिलती है जिसकी शक्ति से अन्य सभी देवता डरते थे। उपनिषद् काल के आते–आते हम रूद्र की प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि पाते हैं। उपनिषद्ों में कहा गया है कि रूद्र ही परम् ब्रह्म है और वे अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जगत पर शासन करते हैं।

महाकाव्यों का काल आते हैं, शैव धर्म क्रमशः लोकधर्म का दर्जा प्राप्त करने लगता है। रामायण में दिये गये उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि इस समय शैव धर्म का प्रसार उत्तर और दक्षिण, भारत के दोनों ही क्षेत्रों में हो गया था।

महाभारत के प्रारम्भिक उल्लेखों शिव को विष्णु के समकक्ष देवता के रूप में प्रदर्शित किया गया है। किन्तु के बाद में अंशों में उनके महत्व में वृद्धि दिखायी गयी है। अनुशासन पर्व के एक उद्धरण में पुत्र प्राप्ति की कामना हेतु कृष्ण को शिव की उपासना करते हुए उल्लिखित किया गया है तथा शिव के द्वारा उन्हें मनोवांछित फल दिये जाने का भी विवरण हैं कृष्ण जो विष्णु एवं वैष्णव धर्म के प्रतीक हैं, उनके द्वारा शिव की उपासना शिव के बढ़ते हुए जनाधार और महत्व की ओर संकेत करती है।

बुद्ध काल में भी शिव उपासना के प्रचलन के अनेक साक्ष्य हमें मिलते हैं। साहित्यिक उल्लेखें के साथ–साथ पुरातात्विक प्रमाणों से शिव उपासना की पुष्टि होती है। आहत मुद्राएँ जिनका समय सातवीं छठी शताब्दी ई.पू. माना जाता है, इस

संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रमाण उपलब्ध करती है। आहत मुद्राओं के ऊपर अंकित चिन्हों में नंदीपाद प्रमुख है। नंदी शिव का वाहन है और इस चिन्ह को शैव धर्म से जोड़ा गया है। कुछ सिक्कों पर वृषभ का अंकन है, जिसका साम्य नंदी से बिठाया गया है। मौर्यकाल में यद्यपि बौद्ध धर्म का सर्वाधिक प्रादुर्भाव था किन्तु साथ–साथ अन्य देवताओं की उपासना के प्रमाण भी मिलते हैं। इन देवताओं में शिव की भी गणना की गयी है। अर्थशास्त्र में विवरणों से भी शिव–पूजा के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। पतंजली का महाभाष्य ई.पू. की दूसरी शताब्दी में शिव की मूर्ति बनाकर उनकी उपासना किये जाने का उल्लेख करता है। मौर्योत्तर काल में विशेष रूप से कुषाणों के समय शिव की उपासना में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके प्रमाण हमें कुषाण शासकों के सिक्कों से मिलते हैं। कुषाण शासकों में विम कडफिसस कनिष्क और हुविष्क ने शैव देवकुल से सम्बन्धित अनेक देवताओं को अपने सिक्कों पर स्थान दिया। विमकडफिसस के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर नंदी के साथ शिव को अंकित किया गया है। कुछ सिक्कों पर शिव के प्रतीक के रूप में त्रिशूल–परशु को प्रदर्शित किया गया है। सिक्कों पर अंकित अभिलेख में भी माहेश्वर शब्द का प्रयोग विमकडफिसस के शैव धर्मानुयायी होने की ओर संकेत करता है।

पाशुपत सम्प्रदाय :

कुछ विद्वानों ने पाशुपत सम्प्रदाय को शैव सम्प्रदायों में प्राचीनतम माना है। इसके प्रवर्तक लकुलीश थे। गुप्त काल में इस सम्प्रदाय का सर्वाधिक प्रसार हुआ। इस सम्प्रदाय के लोग हाथ में दण्ड धारण करते हैं जिसे शिव का प्रतीक माना गया है। इसमें भी शैव सम्प्रदाय की भांति तीन महत्वपूर्ण पदार्थों पति पशु और पाश को सम्मिलित किया गया। अपने वाह्य स्वरूप में शैव और पाशुपत सम्प्रदाय एक से प्रतीत होते हैं किन्तु दोनों के सिद्धान्तों में पर्याप्त अन्तर है।

लिंगायत/वीर शैव – इसका प्रसार दक्षिण भारत में हुआ। इसके प्रवर्तक बसव थे। इस सम्प्रदाय में लोग लिंग के रूप में शिव की उपासना करते थे और चांदी के

सम्पुट में रखकर उसे अपने गले में धारण करते थे। ये निष्काम कर्म में विश्वास रखते और शिव को परम तत्व मानते थे।

तीन देवताओं के गुण, बल और समभाव की यह उदार भावना गुप्त काल की विशेषता है। तीन देवताओं के गुण बल और स्वभाव को समाहित करके बहुदेववाद को एकदेववाद का रूप दिया गया है। गुप्त काल में शैव धर्म के अनेक सम्प्रदायों का विकास हुआ जिनमें चार प्रमुख हैं :–

(i) शैव (ii) पाशुपत (iii) कापालिक (iv) कालामुख

(i) **शैव सम्प्रदाय** के अनुसार कर्ता शिव हैं, करण शक्ति और उत्पादन बिन्दु हैं। इस मत के चार पाद/चरण हैं। विद्या, क्रिया, योग और चर्या। तीन पदार्थ हैंः पति, पशु और पाश।

पति का अर्थ शिव
पशु का अर्थ जीवात्मा
पाश का अर्थ बंधन } जीव पाश से मुक्त होकर शिव अथवा 'पति' बनता है।

(ii) **पाशुपात सम्प्रदाय** गुप्त काल में सर्वाधिक विकसित हुआ। इसके सिद्धान्त के तीन अंगों में भी पति पशु और पाश ही हैं। पति–स्वामी पशु–व्यक्ति या आत्मा पाश–बंधन। पशुपति के रूप में शिव की उपासना की जाती थी।

(iii) **कापालिक** – इष्टदेव भैरव, शंकर के अवतार
असुर प्रवृत्ति का सम्प्रदाय
भैरव को सुरा और नरबलि से पूजा जाता था।

(iv) **कालामुख** – कापालिक की भांति
नर कपाल में भोजन, जल ग्रहण करना।
मानव शव के भस्म को शरीर पर लगाना, अतिमार्गी
इनकी वजह से गुप्तकाल में शैव धर्म उतना लोकप्रिय नहीं हो सका जितना वैष्णव धर्म
इन शाखाओं में नरबलि को समर्थन दिया गया।

मंदिर – नचना कुठरा – बघेलखण्ड, पार्वती मंदिर

नागोद – भुमरा का शिव मन्दिर (म.प्र.)
नागोद – खोह एकमुखी शिवलिंग का मंदिर